

भारतीय संविधान का पुनर्विचार: संवैधानिक परिवर्तन, मूल संरचना और सामाजिक-आर्थिक न्याय की खोज

डॉ० इंदु बघेल¹

प्राप्ति: 18 सितम्बर 2026 / स्वीकृत: 25 सितम्बर 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 28 सितम्बर 2026

Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

भारतीय संविधान 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत तथा 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। यह भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है और शासन-व्यवस्था, मौलिक अधिकारों, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की अवधारणा को संस्थागत आधार प्रदान करता है। संविधान निर्माताओं ने यह स्वीकार किया था कि समाज स्थिर नहीं है और समय के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन होगा। इसलिए संविधान में संशोधन की व्यवस्था की गई, ताकि बदलती परिस्थितियों के अनुरूप संवैधानिक व्यवस्था को विकसित किया जा सके।

यह शोध-पत्र भारतीय संविधान में संशोधन की आवश्यकता, उसकी प्रकृति और सीमाओं का विश्लेषण करता है। इसमें संविधान निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया तथा न्यायपालिका द्वारा विकसित मूल संरचना सिद्धांत का अध्ययन किया गया है। शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ, सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण, मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ तथा वामन राव बनाम भारत संघ जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों के माध्यम से संसद और न्यायपालिका के बीच संवैधानिक शक्ति के संतुलन को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध-पत्र में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों, व्यक्तिगत विधियों तथा समान नागरिक संहिता के प्रश्न का भी विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष है कि संविधान में परिवर्तन समय की आवश्यकताओं के अनुरूप आवश्यक हो सकता है, किंतु ऐसा परिवर्तन संविधान की मूल भावना, लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता तथा मौलिक अधिकारों को नष्ट करने वाला नहीं होना चाहिए। मूल संरचना सिद्धांत संविधान में परिवर्तन और संवैधानिक निरंतरता के बीच एक महत्वपूर्ण संतुलन स्थापित करता है।

प्रमुख शब्द: भारतीय संविधान, संविधान संशोधन, मूल संरचना सिद्धांत, अनुच्छेद 368, सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय, राज्य के नीति-निर्देशक तत्व, समान नागरिक संहिता, मौलिक अधिकार, न्यायपालिका।

प्रस्तावना

संविधान केवल कानूनों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह किसी राष्ट्र की राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक आकांक्षाओं और

1 एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

✉ डॉ० इंदु बघेल, E-mail: indubaghel2010@gmail.com

लोकतांत्रिक मूल्यों की आधारभूत अभिव्यक्ति होता है। भारतीय संविधान स्वतंत्रता आंदोलन की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं, सामाजिक न्याय की आवश्यकता तथा विविधतापूर्ण भारतीय समाज को एक लोकतांत्रिक ढाँचे में संगठित करने के प्रयास का परिणाम है।

भारतीय संविधान ने नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता और समानता प्रदान करने के साथ-साथ लोकतांत्रिक शासन, मौलिक अधिकारों और सामाजिक कल्याण की व्यवस्था स्थापित की। साथ ही, संविधान निर्माताओं ने यह भी समझा कि भविष्य में परिस्थितियाँ बदलेंगी और संविधान को नई आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करना पड़ेगा। इसी उद्देश्य से संविधान में संशोधन की व्यवस्था की गई।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है—क्या संविधान को बदलती सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित किया जाना चाहिए और यदि हाँ, तो इसकी सीमा क्या होनी चाहिए? यदि संविधान अत्यधिक कठोर हो तो वह बदलती परिस्थितियों के साथ तालमेल नहीं बैठा पाएगा। दूसरी ओर, यदि संविधान में परिवर्तन की शक्ति पूर्णतः असीमित हो तो संसद की तत्कालीन बहुमत सरकार संविधान की मूल भावना को प्रभावित कर सकती है। भारतीय संवैधानिक व्यवस्था ने इन दोनों परिस्थितियों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है।

भारतीय संविधान के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में संविधान सभा की मांग स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विकसित हुई। 1934 में एम. एन. राय ने संविधान सभा के विचार को सामने रखा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1935 में संविधान सभा की मांग को औपचारिक रूप से स्वीकार किया। 1938 में जवाहरलाल नेहरू ने यह विचार व्यक्त किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान भारतीय जनता द्वारा स्वयं निर्मित किया जाना चाहिए।

1940 के अगस्त प्रस्ताव तथा 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव के माध्यम से संवैधानिक निर्माण का प्रश्न ब्रिटिश सरकार और भारतीय नेताओं के बीच वार्ता का महत्वपूर्ण विषय बना। अंततः 1946 में कैबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत संविधान सभा का गठन हुआ। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर 1946 को हुई। 13 दिसंबर 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसे 22 जनवरी 1947 को स्वीकार किया गया। यही उद्देश्य प्रस्ताव आगे चलकर भारतीय संविधान की प्रस्तावना के दार्शनिक आधार का महत्वपूर्ण स्रोत बना।

संविधान सभा ने लगभग तीन वर्ष तक विस्तृत विचार-विमर्श किया और विभिन्न देशों के संवैधानिक अनुभवों का अध्ययन किया। 26 नवंबर 1949 को संविधान को अंगीकृत किया गया तथा 26 जनवरी 1950 को इसके अधिकांश प्रावधान प्रभावी हुए।

संविधान संशोधन की आवश्यकता

समाज निरंतर परिवर्तनशील है। आर्थिक संरचनाओं, सामाजिक संबंधों, राजनीतिक संस्थाओं, तकनीकी परिस्थितियों और नागरिक अपेक्षाओं में समय के साथ परिवर्तन होता रहता है। इसलिए संविधान को भी ऐसी व्यवस्था प्रदान करनी होती है जिसके माध्यम से वह आवश्यक परिवर्तन को स्वीकार कर सके। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन की व्यवस्था की गई है। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न संवैधानिक संशोधनों ने राजनीतिक संस्थाओं, सामाजिक न्याय, स्थानीय स्वशासन और अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक आधार देकर लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को मजबूत किया। इसी प्रकार सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों में समय-समय पर परिवर्तन किए गए।

लेकिन संविधान संशोधन की आवश्यकता को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि संसद को संविधान की प्रत्येक व्यवस्था को असीमित रूप से बदलने का अधिकार प्राप्त है। यहीं से संसद की संशोधन शक्ति और संविधान की सर्वोच्चता के बीच संतुलन का प्रश्न उत्पन्न होता है।

साहित्य समीक्षा

भारतीय संविधान और संविधान संशोधन के प्रश्न पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है। एम. लक्ष्मीकांत की Indian Polity भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, संविधान निर्माण, संवैधानिक संस्थाओं तथा संशोधन प्रक्रिया को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है। डी. डी. बसु की Introduction to the Constitution of India भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संरचना तथा प्रमुख संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या करती है। सुभाष कश्यप की Our Parliament संसद की संरचना, कार्य और भारतीय संसदीय लोकतंत्र के विकास को समझने में सहायक है। इसके अतिरिक्त संविधान संशोधन पर वेनिस कमीशन की रिपोर्ट तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट भी संवैधानिक संस्थाओं और संशोधन के प्रभावों को समझने में उपयोगी हैं। हाल के वर्षों में संविधान के पुनर्विचार और नए संविधान की आवश्यकता को लेकर सार्वजनिक विमर्श भी सामने आया है। इन विचारों ने संविधान की स्थायित्व, परिवर्तनशीलता और समकालीन प्रासंगिकता के प्रश्न को पुनः चर्चा के केंद्र में ला दिया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. भारतीय संविधान में संशोधन की आवश्यकता का विश्लेषण करना।
2. संविधान संशोधन की संवैधानिक प्रक्रिया का अध्ययन करना।
3. संविधान सभा के सामने उपस्थित प्रमुख चुनौतियों को समझना।
4. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की प्राप्ति में संविधान संशोधन की भूमिका का विश्लेषण करना।
5. राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन में संशोधनों की भूमिका का अध्ययन करना।
6. संसद और न्यायपालिका के बीच संविधान संशोधन की शक्ति के संबंधों का विश्लेषण करना।
7. मूल संरचना सिद्धांत के विकास और महत्व का अध्ययन करना।
8. समान नागरिक संहिता तथा व्यक्तिगत विधियों के संदर्भ में संवैधानिक परिवर्तन की आवश्यकता का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में संविधान, संवैधानिक संशोधन, न्यायिक निर्णय, सरकारी दस्तावेज तथा रिपोर्ट शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में पुस्तकें, शोध-पत्र, समाचार लेख और अकादमिक अध्ययन शामिल हैं। ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से संविधान निर्माण और संविधान संशोधन की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है, जबकि विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से प्रमुख न्यायिक निर्णयों तथा समकालीन संवैधानिक प्रश्नों का परीक्षण किया गया है।

संविधान संशोधन और न्यायपालिका की भूमिका

भारतीय संविधान में संशोधन की शक्ति को लेकर संसद और न्यायपालिका के बीच लंबे समय से संवैधानिक विमर्श रहा है। प्रारंभिक दौर में न्यायपालिका ने संसद की संशोधन शक्ति की व्यापक व्याख्या की, लेकिन बाद के निर्णयों में इस शक्ति पर सीमाएँ निर्धारित की गईं।

शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ, 1951

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संसद को अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन की शक्ति प्राप्त है और इस शक्ति के अंतर्गत मौलिक अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है।

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 1965

इस मामले में भी न्यायालय ने संसद की व्यापक संशोधन शक्ति को स्वीकार किया। हालांकि कुछ न्यायाधीशों ने इस संभावना को लेकर चिंता व्यक्त की कि संसदीय बहुमत मौलिक अधिकारों को राजनीतिक बहुमत के अधीन कर सकता है।

गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, 1967

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व दृष्टिकोण में परिवर्तन किया और मौलिक अधिकारों में संशोधन की संसद की शक्ति पर महत्वपूर्ण सीमाएँ निर्धारित कीं। इस निर्णय ने संविधान संशोधन की शक्ति की प्रकृति पर गंभीर संवैधानिक बहस को जन्म दिया।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, 1973 और मूल संरचना सिद्धांत

भारतीय संवैधानिक इतिहास में केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य का निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि संसद संविधान के विभिन्न प्रावधानों में संशोधन कर सकती है, लेकिन संविधान की मूल संरचना को नष्ट नहीं कर सकती।

मूल संरचना सिद्धांत का मूल उद्देश्य संविधान की स्थिरता और परिवर्तनशीलता के बीच संतुलन स्थापित करना है। संसद को सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान में परिवर्तन करने की अनुमति है, लेकिन उसे संविधान की मूल पहचान को समाप्त करने का अधिकार नहीं है। इस निर्णय का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने संशोधन और पुनर्लेखन के बीच अंतर स्पष्ट किया। संसद संविधान में सुधार कर सकती है, लेकिन उसे समाप्त करके एक नया संविधान स्थापित नहीं कर सकती।

यदि संसद को संविधान संशोधन की पूर्णतः असीमित शक्ति प्राप्त हो जाए, तो सरकारें अपने राजनीतिक हितों के अनुसार संविधान की मूल विशेषताओं को बदल सकती हैं। मूल संरचना सिद्धांत इसी संभावना के विरुद्ध संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करता है।

इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण, 1975

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल संरचना सिद्धांत को आगे विकसित किया। 39वें संविधान संशोधन के माध्यम से कुछ उच्च संवैधानिक पदों के चुनाव को न्यायिक समीक्षा से बाहर करने के प्रयास को न्यायालय ने संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में परखा। यह निर्णय इस बात का महत्वपूर्ण उदाहरण है कि संसद की संशोधन शक्ति भी लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, न्यायिक समीक्षा और संवैधानिक शासन के मूल सिद्धांतों से ऊपर नहीं हो सकती।

मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, 1980

मिनर्वा मिल्स मामले ने मूल संरचना सिद्धांत को और मजबूत किया। सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संविधान संशोधन के कुछ प्रावधानों को मूल संरचना के विरुद्ध माना। इस निर्णय में मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के बीच संतुलन को संवैधानिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता माना गया। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि संसद की संशोधन शक्ति पर संवैधानिक सीमा स्वयं संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है।

वामन राव बनाम भारत संघ, 1981

वामन राव मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल संरचना सिद्धांत की पुनः पुष्टि की और नौवीं अनुसूची में शामिल कानूनों तथा संवैधानिक संशोधनों के संदर्भ में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

सामाजिक एवं आर्थिक न्याय और संविधान संशोधन

भारतीय संविधान का उद्देश्य केवल राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित करना नहीं था, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की दिशा में भी आगे बढ़ना था। प्रस्तावना, मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्व इस व्यापक उद्देश्य को अभिव्यक्त करते हैं। सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता और ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों की स्थिति को देखते हुए संविधान में समय-समय पर ऐसे संशोधन किए गए जिनका उद्देश्य सामाजिक न्याय और समान अवसर को मजबूत करना था।

इस दृष्टि से संविधान संशोधन सामाजिक परिवर्तन का साधन बन सकता है। किंतु सामाजिक न्याय की स्थापना के नाम पर ऐसे संशोधन नहीं किए जा सकते जो मौलिक अधिकारों या संविधान की मूल संरचना को ही कमजोर कर दें। इसलिए भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन एक केंद्रीय संवैधानिक चुनौती है।

समान नागरिक संहिता और संवैधानिक परिवर्तन

समान नागरिक संहिता का प्रश्न भारतीय संविधान में परिवर्तन और सामाजिक सुधार के विमर्श से जुड़ा हुआ है। व्यक्तिगत विधियाँ विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और पारिवारिक संबंधों जैसे विषयों को प्रभावित करती हैं। इन क्षेत्रों में लैंगिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं।

एक ओर समान नागरिक संहिता के समर्थक इसे लैंगिक समानता, समान नागरिकता और सामाजिक न्याय के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। दूसरी ओर, इसके संबंध में धार्मिक स्वतंत्रता तथा अल्पसंख्यक अधिकारों को लेकर चिंताएँ व्यक्त की जाती हैं। समान नागरिक संहिता का प्रश्न केवल कानून में समानता का प्रश्न नहीं है; यह समानता, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक विविधता, लैंगिक न्याय और अल्पसंख्यक अधिकारों के बीच संतुलन का प्रश्न भी है।

संविधान संशोधन और लैंगिक न्याय

भारतीय समाज में लंबे समय तक पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं का प्रभाव रहा है। इसका प्रभाव महिलाओं के संपत्ति अधिकार, विवाह, तलाक और पारिवारिक निर्णयों में उनकी स्थिति पर भी पड़ा।

शाह बानो प्रकरण ने व्यक्तिगत विधि और महिलाओं के अधिकारों के बीच तनाव को राष्ट्रीय विमर्श का महत्वपूर्ण विषय बनाया। यह उदाहरण बताता है कि संवैधानिक लोकतंत्र में व्यक्तिगत अधिकार, धार्मिक पहचान और सामाजिक सुधार के बीच संतुलन कितना जटिल हो सकता है।

इस संदर्भ में संविधान संशोधन और विधायी सुधार का उद्देश्य महिलाओं के समान अधिकारों को मजबूत करना होना चाहिए, लेकिन ऐसे सुधार संविधान द्वारा संरक्षित स्वतंत्रता और विविधता के अधिकारों के साथ संतुलित होने चाहिए।

आलोचनात्मक विश्लेषण

भारतीय संविधान के अनुभव से स्पष्ट होता है कि संविधान में परिवर्तन आवश्यक है, लेकिन परिवर्तन की शक्ति असीमित नहीं हो सकती।

यदि संविधान में परिवर्तन की कोई व्यवस्था न हो, तो वह बदलती सामाजिक वास्तविकताओं के अनुरूप स्वयं को विकसित नहीं कर पाएगा। इसके विपरीत, यदि संसद को संविधान की प्रत्येक व्यवस्था को बिना किसी सीमा के बदलने की शक्ति प्राप्त हो, तो संविधान की सर्वोच्चता और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा कमजोर हो सकती है।

मूल संरचना सिद्धांत इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। यह संसद को संशोधन की पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है, लेकिन संविधान की मूल पहचान को सुरक्षित रखता है।

हालाँकि, न्यायपालिका की भूमिका को लेकर भी प्रश्न उठते हैं। न्यायिक समीक्षा लोकतांत्रिक संविधान की सुरक्षा के लिए आवश्यक है, लेकिन अत्यधिक न्यायिक हस्तक्षेप विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्ति-संतुलन को प्रभावित कर सकता है। इसलिए संविधान संशोधन के प्रश्न पर संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारतीय संविधान की शक्ति उसकी स्थिरता और परिवर्तनशीलता दोनों में निहित है। संविधान ने लोकतांत्रिक शासन, मौलिक अधिकारों और सामाजिक न्याय की आधारशिला स्थापित की है, लेकिन साथ ही बदलती सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप संशोधन की संभावना भी बनाए रखी है।

संविधान संशोधन भारतीय लोकतंत्र की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी अनुकूलन क्षमता का प्रमाण है। किंतु संशोधन तभी संवैधानिक रूप से उचित है जब वह संविधान की मूल भावना को मजबूत करे और नागरिकों के अधिकारों तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं की रक्षा करे।

केशवानंद भारती का मूल संरचना सिद्धांत इस संदर्भ में भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। इसने संसद की संशोधन शक्ति और संविधान की सर्वोच्चता के बीच संतुलन स्थापित किया है।

सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए समय-समय पर संवैधानिक परिवर्तन आवश्यक हो सकते हैं। लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय, स्थानीय स्वशासन और वंचित समूहों के अधिकारों की सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में संवैधानिक विकास ने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी बनाने में योगदान दिया है।

अतः भारतीय संविधान को न तो पूर्णतः स्थिर और अपरिवर्तनीय दस्तावेज के रूप में देखा जाना चाहिए और न ही एक सामान्य राजनीतिक दस्तावेज के रूप में। यह एक जीवंत संवैधानिक व्यवस्था है, जो परिवर्तन को स्वीकार करते हुए अपने मूल मूल्यों की रक्षा करती है। अंततः कहा जा सकता है कि संवैधानिक परिवर्तन संविधान की प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए आवश्यक है, लेकिन यह परिवर्तन संविधान की मूल संरचना, लोकतांत्रिक मूल्यों और नागरिक स्वतंत्रताओं की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ एवं स्रोत

- Basu, D. D. (2018). *Introduction to the Constitution of India*. LexisNexis.
- Comptroller and Auditor General of India. (2021) *Report on Performance Audit of Efficacy of Implementation of the 74th Constitutional Amendment Act*. Report No. 5 of 2021.
- Constitution of the People's Republic of Bangladesh, Article 7B.
- Constitution of the United States, Article V.
- Debroy, Bibek. "There's a Case for 'We the People' to Embrace a New Constitution," 14 August 2023. <https://www.livemint.com/opinion/online-views/theres-a-case-for-we-the-people-to-embrace-a-new-constitution-11692021963182.html>
- Dey, A. (2016). Why India needs a new constitution. In P. J. Shah (Ed.), *Liberalism in India: Past, present and future* (pp. 17–32). Centre for Civil Society
- European Commission for Democracy through Law, Report on Constitutional Amendment, 2009.
- George, Alex Andrews. (2022). *Important Acts that Transformed India*. McGraw Hill Education.
- I.C. Golaknath v. State of Punjab, AIR 1967 SC 1643 (1967).
- Indira Nehru Gandhi v. Raj Narain, AIR 1975 SC 2299 (1975).
- Indra Sawhney v. Union of India, 1992 Supp. (3) SCC 217.
- Jain, M. P. (2025). *Indian Constitutional Law*. LexisNexis.
- Kesavananda Bharati v. State of Kerala, AIR 1973 SC 1461 (1973).
- Laxmikanth, M. (2025). *Indian Polity*. McGraw Hill Education.
- Minerva Mills Ltd. v. Union of India, (1980) 3 SCC 625.
- S.R. Bommai v. Union of India, (1994) 3 SCC 1.
- Sajjan Singh v. State of Rajasthan, AIR 1965 SC 845 (1951).
- Sen, S. C., "The Constitution of Bangladesh and a Short Constitutional History," *Verfassung und Recht in Übersee*, Vol. 7, No. 3, 1974.
- Shankari Prasad v. Union of India, AIR 1951 SC 458.
- Waman Rao v. Union of India, (1981) 2 SCC 362.
- कश्यप, सुभाष. (2011). *हमारी संसद*. नेशनल बुक ट्रस्ट.
- भारत का संविधान, 1950. <https://www.constitutionofindia.net/constitution/constitution-of-india-1950/>
- संविधान (उनतालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1975. *भारत का राजपत्र*.
- संविधान (चौबीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1971. *भारत का राजपत्र*.
- संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976. *भारत का राजपत्र*.